हीरे की पहचान

विष्णु प्रभाकर

हीरे की पहचान

विष्णु प्रभाकर

राजपाल

मूल्य : पैंतीस रुपये (Rs. 35.00)

संस्करण : 2010 © विष्णु प्रभाकर
ISBN : 978-81-7028-473-4
HEERE KI PEHCHAN (Short Stories)
by Vishnu Prabhakar

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110 006

website www.rajpalpublishing.com
e-mail mail@rajpalpublishing.com

दो शब्द

प्यारे बच्चो, ये कहानियाँ छोटे बच्चों के लिए नहीं है। बारह वर्ष और उससे अधिक आयु के बच्चों के लिए यानी किशोरों के लिए हैं। यह सभी कहानियाँ हमने प्राचीन साहित्य, धार्मिक और लोक साहित्य में से चुनकर पाँच संग्रहों में संकलित की हैं। एक कहानी ऐतिहासिक युग की भी है। ये सब कहानियाँ हमें हमारी संस्कृति से परिचित कराती हैं। मनुष्य को कैसे रहना चाहिए। उसके कर्तव्य क्या हैं, इन बातों का हमें अपने जीवन को जीने की राह दिखाता है। 'ब्राह्मण कौन है, हमें क्रोध नहीं करना चाहिए, और ज्ञान का सही अर्थ क्या है।' ऐसे सभी प्रश्नों के उत्तर इन कहानियों के द्वारा समझाए गए हैं। जब तुम इन्हें पढ़ोगे तो तुम्हें पता लगेगा।

कई कहानियाँ बड़ी अनोखी हैं। पढ़ना शुरू करोगे तो समझ नहीं पाओगे, लेकिन अन्त में कहानीकार जब उन वाक्यों का सही अर्थ बताता है तब पता लगता है कि कितनी सही बात कही गई है। जैसे एक कहानी है, 'धर्म का रहस्य।'

एक दिन एक परिवार में एक कम आयु के मुनि भिक्षा माँगने के लिए गए। उन्हें देखकर घर की बहू ने कहा "मुनिवर अभी तो सवेरा है।"

मुनि ने उत्तर दिया, ''बहन मुझे काल का पता नहीं चलता।''

फिर मुनि ने पूछा, ''तुम्हारा पुत्र कितने वर्ष का है।''

बहू ने उत्तर दिया, ''सोलह वर्ष का।''

मुनि ने पूछा, ''तुम्हारे पति की आयु क्या है?''

वहू ने उत्तर दिया, ''आठ वर्ष।''

मुनि ने पूछा, ''और ससुर।''

बहू बोली, ''वह तो अभी पालने में ही झूल रहे हैं।''

और भी ऐसे ही प्रश्न पूछे, मुनि ने। बहू के ससुर सब कुछ सुन रहे थे। बड़ा क्रोध आया उन्हें घर की इज्जत ख़ाक में मिला रही है। जब मुनि भिक्षा लेकर चले गए तो वृद्ध पुरुष ने बहू को खूब डांटा। बहू ने शांत भाव से कहा, ''आप मुझे डाँटे यह आपको शोभा नहीं देता, पिताजी। मैं मुनि के प्रश्नों का उत्तर कैसे न देती। आप उनके गुरु के पास जाइए और उनसे कहिए कि वह मुनि फिर इधर न आवे।''

वृद्ध पुरुष को यह बात जँच गई। वह ऐसे मुनियों को डाँटना भी चाहते थे। इसलिए वह तुरन्त उसके गुरु के पास पहुँचे। उनसे मुनि की शिकायत की। गुरुजी ने उन मुनि को बुला भेजा। मुनि ने सब बातें सुनकर पूछा, ''गुरुजी भला इनसे पूछिए, मैंने कौन-सी अशोभनीय बातें कीं।''

वृद्ध बोले, ''मेरी पुत्रवधू ने इससे कहा, अभी तो सवेरा ही है। इसने उत्तर दिया, 'मैंने काल को नहीं जाना।' भला क्या यह बात सच हो सकती है।'

शिशु मुनि बोले, ''जी, बहन ने मुझसे पूछा था, ''आपने इस उभरती उम्र में संन्यास का कठोर मार्ग क्यों ग्रहण किया।'' मैंने उत्तर दिया, 'बहन काल अर्थात् मृत्यु का तो कोई भरोसा

नहीं।' 'गुरुदेव इसमें तो कोई अशिष्ट बात नहीं है।'

वृद्ध ने कहा, "अच्छा इसे भी छोड़िए, मेरी पुत्रवधू ने अपने पुत्र की आयु सोलह वर्ष, पति की आयु आठ वर्ष और मुझ वृद्ध पुरुष को पालने में झूलने वाला ही बताया था, भला यह बात सही कैसे हो सकती है?"

शिशु मुनि ने उत्तर दिया, "गुरुदेव मैंने बहन से पूछा था कि तुम्हारे घर में कोई 'धर्मज्ञ' है या नहीं, इस पर उसने उत्तर दिया। 'मेरा पुत्र जन्म से ही धर्म-कर्म जानता है और उसकी आयु सोलह वर्ष है। मेरे पति पहले तो परम नास्तिक थे, किन्तु अब मेरे समझाने-बुझाने से धर्म के मर्म को समझने लगे हैं। और आठ वर्ष से वह भी धर्मनिष्ठ हैं, लेकिन मेरे ससुर आज भी धर्म की बात सुनना नहीं चाहते।" यह वृद्ध पुरुष धर्म का रहस्य जानते तो आपके पास आते ही नहीं।

"यह सुनकर वृद्ध पुरुष लज्जित हुए। वह अब धर्म के रहस्य और शक्ति को समझ गए थे।"

है ना यह कहानी पहेलियों जैसी, तो इन कहानियों के नाना रूप हैं। वह सब प्राचीन काल की संस्कृति पर प्रकाश डालती हैं।

इन कहानियों की पुस्तकों के साथ-साथ एक और पुस्तक है, 'तपोवन की कहानियाँ' ये कहानियाँ दूसरी कहानियों से अलग हैं। यह प्राचीन काल के परम विद्वान महर्षियों की कहानियाँ हैं। उनके तप, त्याग और साधना पर प्रकाश डालती हैं। ये महर्षि आश्रमों और मठों में रहते थे। कुछ ऐसे आश्रम और मठ बन गए थे कि जो भी महर्षि उस गद्दी पर बैठता, वह उसी नाम से जाना जाता था। जैसे आज शंकराचार्य जी की गद्दी है। जो व्यक्ति उस पर बैठेगा, वह शंकराचार्य के नाम

से ही जाना जाएगा। प्राचीन काल में भी ऐसी ही गद्दियाँ थीं या आश्रम थे। जैसे अगस्त मुनि, वशिष्ठ जी और ऋषि विश्वामित्र आदि। अगस्त मुनि का आश्रम हिमालय में ही माना जाता है, विन्ध्यांचल पर्वत पर भी, तमिल प्रदेश में भी। और यहाँ तक कि भारत के बाहर इण्डोनेशिया मं भी। अब एक ही व्यक्ति प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक कैसे रह सकता है। वशिष्ठ जी और विश्वामित्रजी राजा हरिशचंद्र के समय में भी हुए हैं और राम के समय में भी। तो यह शंकराचार्य के समान गद्दियाँ थीं, जो इन पर बैठता वह इसी नाम से पुकारा जाता था।

यह सब बातें तो तुम बड़े होकर ठीक-ठीक समझोगे, अभी तो तुम इन्हें पढ़ो और इनका अर्थ समझो। समय बदल गया है। कहानियाँ कहने का ढंग भी बदल गया है। जीवन के मूल्य भी बदल गए हैं, पर अपने प्राचीन साहित्य से परिचित होना भी आवश्यक है।

तभी तो पता लगता है कि समय के साथ-साथ हमारा रहन-सहन, हमारे आचार-विचार कैसे बदल जाते हैं। यह बदलना होता तो आगे बढ़ने के लिए ही है। इसी बात को तुम्हें समझना है।

विष्णु प्रभाकर

23.1.2004

सूची

हीरे की पहचान	9
ब्राह्मण कौन?	13
पिता और पुत्र	17
लक्ष्य-भेदी राजकुमार	22
मणि का प्रभाव	26
इलापुत्र	30
एक भाव एक माल	34

हीरे की पहचान

बहुत पुरानी बात है। एक गड़रिया था। वह अपनी भेड़-बकरियों को लेकर नदी किनारे घूम रहा था। अचानक उसने देखा कि एक पत्थर चमक रहा है। उसने उसे उठा लिया और घर ले चला। मार्ग में उसे एक बनिया दिखाई दिया। गड़रिये ने वह पत्थर उसे दिखाया। बनिया उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और बोला, ''क्या तुम इसे बेचोगे?''

गड़रिया बोला, ''हाँ-हाँ, एक सेर गुड़ दें तो आप इसे ले सकते हैं।''

बनिए ने खुशी-खुशी उसे एक सेर गुड़ दे दिया और वह पत्थर अपनी दूकान पर सजाकर रख दिया। कुछ दिन बाद एक व्यापारी ने उस पत्थर को देखा और एक रुपये में खरीद लिया। उसने भी उसे अपनी दूकान पर सजाकर रख दिया। सभी यह जानते थे कि यह एक सुन्दर पत्थर है। लेकिन एक दिन अचानक एक जौहरी उस बाज़ार में आया और उसने व्यापारी की दूकान पर उस चमकदार पत्थर को देखा। वह व्यापारी से बोला, ''यह पत्थर मुझे दे सकते हो ?''

व्यापारी ने उत्तर दिया, ''हाँ-हाँ क्यों नहीं।''

जौहरी ने पूछा, ''क्या लोगे ?''

व्यापारी ने उत्तर दिया, ''पाँच रुपये दे दीजिए।''

जौहरी बोला, ''पाँच रुपये तो बहुत हैं। मैं तुम्हें इस पत्थर का एक रुपया दे सकता हूँ।''

व्यापारी बोला, ''आगे जाइए। एक पैसा कम नहीं होगा।''

जौहरी ने कहा, ''अच्छा, दो रुपये ले लो।''

और इस प्रकार जौहरी उसका मूल्य बढ़ाता रहा। पहुँचते-पहुँचते वह चार रुपये पौने सोलह आने तक पहुँच गया, केवल एक पैसे का अन्तर रह गया लेकिन व्यापारी अपनी बात पर दृढ़ था। उसने कहा, ''दे सकते हो तो पूरे पाँच रुपये दो, नहीं तो अपना रास्ता लो।''

एक पैसे की कोई बात नहीं। लेकिन बात की पख पड़ गई थी। जौहरी आगे बढ़ गया। सोचा, अभी घूमकर आता हूँ। इस पत्थर को कौन लेगा। इसे यहाँ कौन पहचानता है। यह व्यापारी अभी मुझे पुकारेगा और पत्थर मुझे देगा।

यही सोचकर वह आगे बढ़ गया। हर क्षण वह सोचता था कि व्यापारी अब मुझे पुकारेगा, अब मुझे पुकारेगा, लेकिन व्यापारी भी हठी था। उसने उसे नहीं पुकारा और वह आगे बढ़ता चला गया। कुछ देर बाद ऐसा हुआ कि एक दूसरा जौहरी उस बाज़ार में आया। घूमते-घूमते वह उस व्यापारी की दूकान के पास आ निकला। सहसा उसकी नज़र पत्थर पर पड़ी और एकदम उसने उसे उठा लिया। पूछा ''क्या यह पत्थर बेचने के लिए है ?''

व्यापारी ने कहा, ''जी हाँ। कोई खरीदे तो बेचने के लिए है ?''

जौहरी ने कहा, ''मैं इसे खरीदना चाहता हूँ। क्या लेंगे ?''

व्यापारी समझदार था। समझ गया कि यह पत्थर किसी काम

का है। उसने कहा, ''आप बीस रुपये दे सकें तो इसे ले जाइए।''

जौहरी ने यह सुनकर एक क्षण उस व्यापारी की ओर देखा

फिर तुरन्त जेब से रुपये निकालकर उसे दे दिए और पत्थर लेकर चला गया। कुछ देर के बाद पहला जौहरी फिर उस व्यापारी की दूकान पर आया, लेकिन अब तो वह पत्थर वहाँ नहीं था। जैसे उसके प्राण निकल गए। कई क्षण इधर-उधर देखा। जब पत्थर नहीं दिखाई दिया तो घबराकर व्यापारी से पूछा, "क्यों भाई, तुमने वह पत्थर उठाकर कहाँ रख दिया ?"

व्यापारी ने उत्तर दिया, "उठाकर रखने की क्या ज़रूरत थी? मैंने तो उसे बेच दिया।

जौहरी जैसे ठगा गया। उसके मुँह से निकला, "बेच दिया ! सच !"

व्यापारी ने कहा, "हाँ-हाँ, बेच दिया। सभी तुम्हारे जैसे झक्की नहीं होते। तुम उसे खरीदना नहीं चाहते थे। अब इस तरह घबरा रहे हो।"

जौहरी ने किसी तरह सँभलकर पूछा, "ठीक है, ठीक है, लेकिन तुमने उसे बेचा कितने में ?"

व्यापारी बोला, "पूरे बीस रुपये में बेचा है। जो उसे खरीदकर ले गया है उसने एक बार भी कीमत कम करने के लिए नहीं कहा।"

जौहरी ने कहा, "मूर्ख, तूने तो अनर्थ कर डाला। अरे, वह जौहरी तम्हें ठग कर ले गया। वह पत्थर तो रत्न था और उसका मूल्य था सवा लाख रुपया।"

व्यापारी ने उत्तर दिया, "श्रीमान जी, मैं नहीं ठगा गया, ठगे तो आप गए। मैं तो उसे पहचानता नहीं था। एक रुपये में खरीदा था, बीस में बेच दिया, लेकिन धन्य है आपकी परख ! एक पैसे में आपने सवा लाख का रत्न खो दिया। अब कहिए, मूर्ख आप हैं कि मैं ?

ब्राह्मण कौन?

प्राचीनकाल में चन्द्रवंश में एक प्रतापी राजा राज्य करते थे। बाद में वह विश्वामित्र के नाम से प्रसिद्ध हुए। एक बार वह अपनी सेना के साथ युद्ध-भूमि से लौट रहे थे। मार्ग में ब्रह्मर्षि वशिष्ठ का आश्रम पड़ा। उन्होंने राजा का स्वागत-सत्कार किया और वहीं पर भोजन करने के लिए प्रार्थना की।

राजा ने सोचा, ''वन में रहने वाले यह ब्रह्मर्षि मेरी इतनी बड़ी सेना को कहाँ से भोजन खिलाएँगे ? इसलिए उन्होंने विनम्रतापूर्वक ब्रह्मर्षि का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया।''

ब्रह्मर्षि बोले, ''आप इस बात की चिन्ता न कीजिए। सब प्रबन्ध हो जाएगा।''

ऐसा ही हुआ भी। ब्रह्मर्षि के पास उन दिनों कामधेनु थी। उसकी कृपा से उन्होंने नाना प्रकार के व्यंजनों से राजा की सारी सेना को तृप्त कर दिया। यह देखकर राजा का मन डोल उठा। उन्होंने ब्रह्मर्षि से प्रार्थना की कि वह कामधेनु को उन्हें दे दें।

लेकिन ब्रह्मर्षि ऐसा नहीं कर सकते थे। कामधेनु देवताओं की थी। उन्होंने मना कर दिया। परन्तु राजा का मन तो डोल उठा था। वह नहीं माने और कामधेनु को बलपूर्वक ले गए।

कामधेनु ने ब्रह्मर्षि से गुहार की और अपने तप के बल

से ब्रह्मर्षि वशिष्ट ने एक बहुत बड़ी सेना को पैदा किया। घोर युद्ध हुआ। विश्वामित्र की सेना पराजित हुई। वह और भी क्रुद्ध हो उठे। बार-बार उन्होंने ब्रह्मर्षि के आश्रम पर आक्रमण किया। तब ब्रह्मर्षि ने अपने ब्रह्म तेज से एक दण्ड का निर्माण किया। विश्वामित्र अब कुछ न कर सके और उनका सारा बल ब्रह्म तेज के सामने व्यर्थ हो गया। वह समझ गए कि ब्राह्मण क्षत्रियों से ऊँचे होते हैं, इसी ब्राह्मणत्व को प्राप्त करने के लिए उन्होंने घोर तप किया।

धीरे-धीरे उनकी तपस्या इतनी कठोर हो उठी कि देवता और मनुष्य, मुनि और ऋषि, तपस्वी और योगी सभी ने यह स्वीकार किया कि यह राजा ब्राह्मण होने के सर्वथा योग्य है।

लेकिन ब्रह्मर्षि वशिष्ट इस बात को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने कहा, ''विश्वामित्र अभिमान के वश होकर यह कठोर तपस्या कर रहे हैं, जो त्याग अभिमान पर आधारित है वह सच्चा त्याग नहीं है। इसलिए मैं उनको ब्राह्मण स्वीकार नहीं करता।''

जब विश्वामित्र को यह समाचार मिला तो वह क्रोध से जल उठे और उन्होंने वशिष्ठ के सौ पुत्रों को मरवा डाला। ब्रह्मर्षि वशिष्ठ को इससे बहुत दुःख हुआ। शोक के कारण वह विचलित से हो उठे। लेकिन अपनी बात पर वह दृढ़ रहे। उनके विचार में जो सत्य नहीं था, उसे वह कभी स्वीकार नहीं कर सकते थे। विश्वामित्र ब्राह्मण नहीं हो सकते थे, क्योंकि उन्होंने अभी क्रोध को भी नहीं जीता था।

विश्वामित्र ने सुना। उनके तन-बदन में अग्नि प्रज्वलित हो उठी। क्रोध के कारण वह पागल हो आए और उन्होंने निश्चय किया कि मैं वशिष्ट को मार डालूँगा। इधर दुष्ट विचार को

पूरा करने के लिए वह वशिष्ठ के आश्रम की ओर चल पड़े। क्रोध आदमी को अन्धा कर देता है। विश्वामित्र भी अन्धे हो गए थे। आश्रम में पहुँचकर वह उनकी कुटिया के पीछे जा छिपे कि अवसर पाकर अन्दर घुसें और वशिष्ठ को मार डालें।

सहसा उसी समय उन्होंने सुना कि अन्दर ब्रह्मर्षि वशिष्ठ किसी से बातें कर रहे हैं। बस सब-कुछ भूलकर वह उन बातों को सुनने लगे। उन्होंने सुना कि ब्रह्मर्षि उनके तप की प्रशंसा कर रहे हैं। उनके मन में विश्वामित्र के प्रति न क्रोध है और न ईर्ष्या ही। वह शुद्ध और पवित्र होने के साथ-साथ क्षमा से परिपूर्ण हैं। जैसे-जैसे विश्वामित्र उन वचनों को सुनते गए तैसे-तैसे उनका मन निर्मल होता चला गया। आखिर उनसे रहा नहीं गया। जिन अस्त्रों से वह वशिष्ठ को मारना चाहते थे, उनको उन्होंने वहीं फेंक दिया और अन्दर जाकर ब्रह्मर्षि के चरणों में गिर पड़े।

वशिष्ठ ने राजा को देखा। बड़े प्रेम से उनका स्वागत किया

और कहा, "ब्रह्मर्षि...।"

विश्वामित्र हठात् उनकी ओर देखने लगे। बोले, "महर्षि, आपने मुझे ब्रह्मर्षि कहकर पुकारा। क्या आप यह बताने की कृपा करेंगे कि इससे पहले आपने मेरी तपस्या का आदर क्यों नहीं किया था ?"

वशिष्ठ ने उत्तर दिया, "क्योंकि तब आप शक्ति के मद में आकर ब्राह्मण-पद की माँग कर रहे थे।"

विश्वामित्र बोले, "और अब ?"

वशिष्ठ ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "अब तो आपको पश्चात्ताप हो रहा है। यही सच्ची ब्राह्मण-वृत्ति है। आपने इसे स्वीकार कर लिया है, इसलिए मैंने आपको ब्रह्मर्षि कहकर पुकारा।"

और उसके बाद दोनों ब्रह्मर्षि परम मित्र हो गए। यह सब इसी कारण तो हुआ कि वशिष्ठ निडर होकर बिना किसी प्रतिशोध की भावना के सच बोलना जानते थे और विश्वामित्र अपने अपराध को पहचानकर उसके लिए पश्चात्ताप कर सकते थे। इस प्रकार सत्य बोलना कितना सुन्दर है, चाहे ऐसा करने में कितनी ही विपत्ति उठानी पड़े। और इसी तरह अपना अपराध स्वीकार करना भी सुन्दर है, चाहे ऐसा करने में कितना ही छोटा क्यों न बनना पड़े। ऐसा करके ही विश्वामित्र इतने बड़े बन गए।

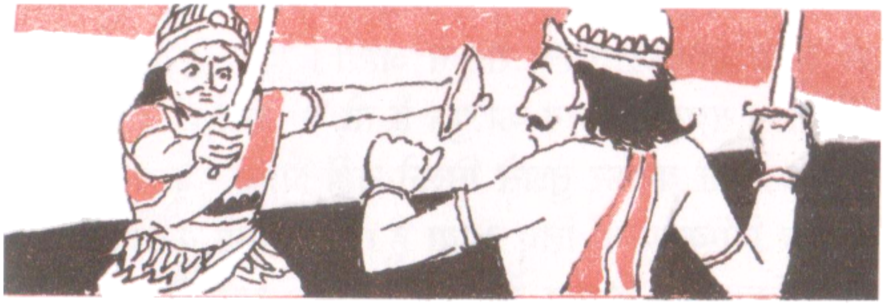

पिता और पुत्र

वनवास के समय अर्जुन जब इधर-उधर घूम रहे थे तो वह मणिपुर भी गए थे। वहाँ पर उन्होंने राजकन्या चित्रांगदा से विवाह किया था। इसी समय नागकन्या उलूपी से भी उनका विवाह हुआ था। विवाह के बाद अर्जुन कुछ समय तक मणिपुर में रहे और फिर हस्तिनापुर लौट गए। उनके पीछे चित्रांगदा ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम था बभ्रुवाहन। क्योंकि मणिपुर के राजा के कोई सन्तान नहीं थी इसलिए बभ्रुवाहन नाना के राज्य के उत्तराधिकारी हुए।

महाभारत के युद्ध में विजय पाकर पांडव एक बार फिर दिग्विजय पर निकले। अनेक देशों को विजय करते हुए अर्जुन फिर मणिपुर आए। पिता के आगमन का समाचार पाकर बभ्रुवाहन को बहुत खुशी हुई। वह बड़े ठाठ के साथ उनका स्वागत करने के लिए नगर के बाहर पहुँचा। उनकी सौतेली माँ उलूपी भी साथ थी। वास्तव में उसी ने बभ्रुवाहन का लालन-पालन किया था।

अर्जुन ने जैसे ही अपने पुत्र को इस प्रकार आते हुए देखा तो वह क्रुद्ध हो उठा। बोला, ''अरे मूर्ख ! अपने प्राणों के मोह के कारण ही तू मुझे अपना पिता कहता है। तुझे लज्जा नहीं

आती। यदि तू सचमुच अर्जुन का पुत्र होता तो अर्जुन के समान ही सीना तानकर उसके सामने आता। यदि मैं यह मान भी लूँ कि तू सचमुच अर्जुन का पुत्र है तो भी क्या होता है। आज मैं तेरा पिता बनकर तुझसे मिलने नहीं आया हूँ। मैं तेरा शत्रु हूँ और दिग्विजय के लिए आया हूँ। जब लोगों को यह मालूम होगा कि अर्जुन के पुत्र ने अपनी पराजय स्वीकार कर ली तो वे क्या कहेंगे ? उस समय मुझे कितनी वेदना होगी ! मेरा पुत्र इतना कायर ! ओह, मैं न जानता था कि चित्रांगदा तेरे जैसे नपुंसक पुत्र की माता होगी। वरना मैं उससे विवाह क्यों करता। यदि तू मेरे सामने शत्रुओं की तरह धनुष ताने हुए मेरा सामना करने के लिए, मुझे पराजित करने के लिए ललकारता तो आत्म-गौरव के कारण मेरा वक्षस्थल फूल उठता। तू मुझे पराजित करता। लेकिन वही मेरी विजय होती। संसार को यह कहने का अवसर मिलता कि अर्जुन का पुत्र अर्जुन से बढ़कर निकला। लेकिन अब संसार क्या कहेगा ? यही ना, कि अर्जुन का पुत्र कायर है। गुरुकुल को कलंकित करने वाला है। ऐसा सुनकर क्या मैं आत्मग्लानि से गड़ नहीं जाऊँगा। क्या चित्रांगदा का मुँह काला नहीं पड़ जाएगा। धिक्कार है उसे, और धिक्कार है मुझे।''

बभ्रुवाहन को काटो तो खून नहीं। उसका चेहरा मलिन हो गया। लेकिन वह कुछ उत्तर देता इससे पहले ही नागकन्या उलूपी नागिन की भाँति फुँकार उठी। अर्जुन का एक-एक शब्द उसके वक्ष को भेद रहा था। उसने एक बार तिरस्कार के साथ अपने पति की ओर देखा। फिर बभ्रुवाहन से बोली, ''हे पुत्र ! या तो तू इस पाण्डु-सुत का मान मर्दन कर इसके झूठे गर्व को खंड-खंड कर दे, या फिर मुझे और अपनी माता चित्रांगदा

को मार डाल। क्षत्राणी मर सकती है लेकिन अपना अपमान नहीं सह सकती। इस पाण्डु-सुत ने तेरी माता चित्रांगदा का घोर अपमान किया है। वह इस समय यहाँ नहीं है। लेकिन मैं तो हूँ। उसने केवल तुझे जन्म दिया है किन्तु मैंने तो तेरा लालन-पालन किया है। तेरे ऊपर मेरा पूर्ण मातृ-अधिकार है। इसीलिए चित्रांगदा का अपमान मेरा अपमान है। पाण्डु-सुत ने ये सब अपशब्द मुझे ही लक्ष्य करके कहे हैं।''

कहते-कहते नागकन्या के नयन रक्तवर्ण हो उठे और वह घायल सिंहनी के समान गरज उठी, ''हे पुत्र! युद्ध के लिए प्रस्तुत हो जा, यह पाण्डु-पुत्र तुझ से अधिक बलवान नहीं हो सकता। इसने तुझे कायर नहीं कहा है, तेरी माँ को कायर कहा है। किन्तु यह वे दिन भूल गया जब द्रौपदी की साड़ी खींची गई थी, जब भरे दरबार में दुर्योधन ने उसके लात मारी थी। जब वह स्वयं प्राणों के भय से राजा विराट् के यहाँ बृहन्नला बनकर नाचा-गाया करता था। सर्वनाशी महाभारत के युद्ध में विजय पाकर यह अपने सामने आज किसी को कुछ नहीं समझता। मानो समस्त पृथ्वी वीरों से शून्य हो गई है। यदि मैं आज इसकी पत्नी न होती तो मैं स्वयं युद्ध-भूमि में उतरती। परन्तु मेरा पतिव्रत धर्म मुझे ऐसा करने की आज्ञा नहीं देता। इसलिए हे पुत्र! अपनी माता के अपमान का बदला लेने के लिए तू इस पाण्डु-सुत का मान-मर्दन कर। और इसे बतला दे कि तूने सचमुच किसी वीर क्षत्राणी का दूध पिया है।''

पिता के अपमान भरे शब्दों से वीर बभ्रुवाहन का रक्त उत्तेजित होता आ रहा था, उलूपी के ये ओजस्वी शब्द सुनकर उसका वक्ष तन गया। उसने तलवार निकाल ली और यह कहते हुए कि 'मेरी माँ का अपमान करने वाला जीवित नहीं रह सकता'

उसने अर्जुन पर आक्रमण कर दिया। अर्जुन भी युद्ध के लिए प्रस्तुत था। देखते-देखते पिता-पुत्र में घमासान युद्ध छिड़ गया। चकित होकर सारा मणिपुर इस अद्भुत युद्ध को देखने लगा। दोनों बराबर के वीर थे, लेकिन बभ्रुवाहन युवक था। इसलिए अन्त में उसने अपने पिता को पराजित करके मूर्छित कर दिया।

युद्ध बन्द हो गया। माता और पुत्र सब अर्जुन के उपचार में लग गए। कुछ क्षण बाद माता और पुत्र का स्नेह-स्पर्श पाकर अर्जुन ने आँखें खोलीं। उसके मुख पर स्नेह का दिव्य प्रकाश चमक रहा था। बभ्रुवाहन को उसने लपककर छाती से लगा दिया और गद्गद होकर बोला, ''पुत्र ! तू सचमुच वीर है। मेरा पुत्र ऐसा ही हो सकता है।''

और फिर उलूपी तथा चित्रांगदा की ओर देखकर अर्जुन प्यार से मुस्कराने लगे। उनके घायल हो जाने का समाचार पाकर चित्रांगदा स्वयं भी आ गई थी। और उसका मस्तक अपनी गोद में रखे बैठी थी।

लक्ष्य-भेदी राजकुमार

प्राचीनकाल में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उसकी पटरानी की कोख से बोधिसत्त्व ने जन्म लिया और उसका नाम हुआ असदिसकुमार। दो वर्ष बाद एक और पुत्र का जन्म हुआ, उसका नाम रखा गया ब्रह्म कुमार।

राजकुमार असदिसकुमार पढ़ने के लिए तक्षशिला गए। वहाँ उन्होंने चारों वेद और अठारह विद्याएँ पढ़ीं। तीर, तलवार चलाने में उन्होंने जो दक्षता प्राप्त की, उसका कोई मुकाबला नहीं कर सकता था। उसके बाद वह वाराणसी लौट आए। कुछ दिन बाद महाराज ब्रह्मदत्त बीमार हो गए और अपनी मृत्यु के समय उन्होंने बड़े राकुजमार को राजा और छोटे को उप-राजा बनाने की घोषणा की।

लेकिन पिता की मृत्यु के बाद राजकुमार असदिसकुमार ने राजा बनना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने अपने छोटे भाई को राजगद्दी पर बैठाया और अपना समय भगवद् भजन में बिताने लगे। चारों ओर उनका यश फैल गया।

इस प्रकार काफी दिन बीत गए। तब एक दिन एक चुगलखोर दरबारी ने छोटे राकुजमार से कहा, ''क्षमा कीजिए महाराज, बड़े राजकुमार परोपकार का ढोंग कर रहे हैं। वास्तव

में वह प्रजा को अपनी ओर करके आपको एक दिन गद्दी से उतार देंगे।''

राजा कानों का बहुत कच्चा था। उसने कुछ नहीं सोचा। बरा बोधिसत्त्व को कैद करके तहखाने में डाल देने की आज्ञा निकाल दी। लेकिन बोधिसत्त्व के किसी हितैषी उन्हें सावधान कर दिया। बोधिसत्त्व बहुत खिन्न हुए और तुरन्त वहाँ से दूसरे देश में चले गए।

वहाँ के राजा ने उनका अद्‌भुत रूप देखा तो बड़ा प्रभावित हुआ। पूछा, ''कहो वीर, यहाँ किस लिए आए हो ? क्या काम

करोगे ? कितना वेतन लोगे ?''

बोधिसत्त्व ने उत्तर दिया, ''मैं धनुर्धारी होकर आपकी सेवा करना चाहता हूँ। वर्ष में एक लाख रुपये वेतन लूँगा।''

राजा ने तुरन्त उसकी बात स्वीकार कर ली और बोधिसत्त्व वहाँ आराम से रहने लगे। इसी तरह बहुत दिन बीत गए। एक दिन राजा उद्यान में लेटा हुआ था तो उसकी दृष्टि सबसे ऊँची डाल पर लगे हुए आम पर गई। उन्होंने सैनिकों को बुलाया। कहा, ''क्या कोई तीर मारकर इस आम को साबुत का साबुत गिरा सकता है ?''

एक सैनिक ने कहा, ''अपने नए धनुर्धर को बुलाइए न, उसकी परीक्षा भी हो जाएगी।''

राजा को यह बात जँच गई और उसने बोधिसत्त्व को बुला भेजा। बोधिसत्त्व ने आकर सब कुछ देखा-समझा। उसने सफेद वस्त्र उतारकर लाल वस्त्र और कच्छा पहना, शरीर पर अस्त्र-शस्त्र और सिर पर पगड़ी धारण की। फिर कमान लेकर राजा से पूछा, ''महाराज, इस आम को ऊपर जाने वाले तीर से गिराऊँ या नीचे आने वाले तीर से ?''

महाराज ने कहा, ''मैंने ऊपर जाने वाले तीर से चीज़ कटती देखी है। आज तुम नीचे आने वाले तीर का चमत्कार दिखाओ।''

तीर को संभालकर बोधिसत्त्व बोला, ''महाराज, यह तीर चातुर्महाराजिक भवन तक जाकर लौटेगा। इसमें कुछ समय लगता है। तीर डोर से छूटकर आम को लेकर नीचे आ जाएगा।''

महाराज और दरबारी इस कौशल को देखने के लिए तैयार हो गए। बोधिसत्त्व ने तीर छोड़ा। वह डण्ठल को छेदता हुआ ऊपर को निकल गया। उसके बाद उसने उससे भी अधिक तेज़ गति से जाने वाला एक दूसरा तीर छोड़ा। चातुर्महाराजिक

भवन तक पहुँचकर इस दूसरे तीर ने पहले तीर की पूँछ से लगकर उसको नीचे मोड़ दिया और स्वयं देवलोक चला गया। पहला तीर तेजी से हवा को चीरता हुआ नीचे लौटा। उतरते हुए उसने ठीक स्थान पर डण्ठल को छेदा। दोनों साथ-साथ नीचे आ गए। बोधिसत्त्व ने एक हाथ से तीर और दूसरे हाथ से आम को पकड़ लिया। यह चमत्कार देखकर प्रजा जय-जयकार कर उठी। राजा ने उसे धन और मान देकर सम्मानित किया।

इसी समय वाराणसी के राजा के शत्रुओं को पता लगा कि धनुर्धारी असदिसकुमार वहाँ नहीं है तो उन सब ने मिलकर वाराणसी पर आक्रमण कर दिया। अब राजा को अपने भाई की याद आयी। उसने एक दूत को उनके पास भेजा कि वह अनुनय-विनय करके उन्हें लौटा लाए।

असदिसकुमार अपने भाई का सन्देश पाकर तुरन्त वाराणसी लौटे। वहाँ की स्थिति का अध्ययन किया और फिर एक तीर पर यह लिखा, "मैं असदिसकुमार वाराणसी आ गया हूँ। यदि किसी भी शत्रु ने वाराणसी की प्रजा का बाल भी बाँका किया तो दूसरा तीर चलाकर मैं सबको नष्ट कर दूँगा। इसलिए जो कुशल चाहते हैं, वे तुरन्त भाग जाएँ।"

और उस तीर को उन्होंने कमान पर चढ़ाकर वहाँ फेंका जहाँ राजा लोग भोजन कर रहे थे। उन्होंने यह सन्देश पढ़ा तो घबरा गए और जिसे जिधर मार्ग मिला, वह उधर ही भाग गया।

इस प्रकार वह संकट टल गया और बोधिसत्त्व ने अपने भाई को धर्म से राज करने की सलाह दी। फिर स्वयं संन्यास ग्रहण करके तप करने चले गए।

मणि का प्रभाव

पूर्व मालव देश में रथपुर नाम का एक नगर था। वहाँ शूरदत्त नाम का एक सेठ रहता था। अत्यन्त गुणवती शूरदत्ता उसकी पत्नी थी। इन दोनों के शूरमित्र और शूरचन्द्र नाम के दो पुत्र थे। वे अत्यन्त सुन्दर थे। एक पुत्री भी थी जिसका नाम मित्रवती था। कुछ समय बाद शूरदत्त सेठ का स्वर्गवास हो गया। उसी के साथ उसकी सम्पत्ति भी विलीन हो गई। निर्धन हो जाने पर दोनों भाई धन कमाने के लिए सिंहल द्वीप चले गए।

12 वर्ष के बाद उन्हें एक अमूल्य मणि मिली। उसको लेकर रथपुर की ओर लौट चले। मार्ग में एक स्थान पर वे ठहरे। बड़ा भाई मणि को लेकर वहीं रहा। छोटा भाई भोजन के लिए ग्राम चला गया। उसके पीछे बड़े भाई के मन में आया कि यदि मैं छोटे भाई को मार डालूँ, तो यह अमूल्य रत्न मेरा हो जाएगा। कई क्षण तक वह मारने की कल्पना करता रहा, लेकिन तभी सहसा उसे ज्ञान हुआ कि अरे, मैं पिता के समान हूँ। इस मणि के लिए पुत्र-सम अपने छोटे भाई को मार डालना चाहता हूँ।

उसी समय शूरचन्द्र भोजन-सामग्री लेकर आ गया। दोनों

भाई भोजन करके आगे चल दिए। दूसरे दिन छोटा भाई मणि लेकर वन में रहा और बड़ा भाई शूरमित्र भोजन लेने नगर की ओर गया। उस समय छोटे भाई ने भी सोचा कि यदि मैं बड़े भाई को मार डालूँ, तो यह रत्न मेरे पास ही रह जाएगा। लेकिन दूसरे ही क्षण उसको अपने विचार पर पश्चात्ताप हुआ। तभी भोजन-सामग्री आ गई और दोनों भाई खा-पीकर नदी के तट पर बैठ गए। बैठे-बैठे बड़े भाई ने छोटे भाई शूरचन्द्र से कहा, "भैया, मैं यह रत्न नहीं चाहता। तुम ही इसे ले लो।"

शूरचन्द्र को बड़ा आश्चर्य हुआ। हाथ ज़ोड़कर उसने कहा, "भाई साहब ! इस रत्न में आपका और मेरा बराबर भाग है, आप इसे मुझे क्यों दे रहे हैं ? सच बताइए।"

यह सुनकर शूरमित्र का हृदय स्नेह से भर आया और उसने अपने मन की बात कह डाली। बड़े भाई की बात सुनकर छोटा भाई बोला, "भाई साहब ! आप सच कहते हैं। मेरे मन में भी ऐसे ही विचार उठे थे। यह रत्न अनर्थ की जड़ है, इसे फेंक देना चाहिए।"

और वे उस रत्न को नदी में फेंककर घर लौट आए। उधर वह रत्न नदी में गिरा तो एक मछली ने निगल लिया। धीवर ने उस मछली को पकड़ा और बाज़ार में ले गया। अकस्मात् तभी उन दोनों भाइयों की माँ उनके लिए मछली लेने बाज़ार आई। उसने वही मछली खरीदी। घर जाकर जब उसे चीरा तो वह रत्न निकल आया। आश्चर्य से चकित होकर उसने उस रत्न को हाथ में ले लिया तो तुरन्त उसके मन में यह विचार आया कि यदि मैं अपने दोनों लड़कों और लड़की को मार डालूँ तो फिर इस रत्न को लेकर सुख के साथ घर में रहूँगी। लेकिन दूसरे ही क्षण उसे बहुत दुःख हुआ, "भला मैं माँ होकर अपनी

सन्तान को कैसे मार सकती हूँ।''

और इस पश्चात्ताप से प्रेरित होकर उसने वह रत्न अपनी पुत्री को दिया। जैसे ही रत्न मित्रवती के हाथ में पहुँचा, उसकी बुद्धि भी जड हो गई और उसने माँ और भाइयों को विष देने का विचार किया। लेकिन दूसरे ही क्षंण उसे भी अपने ऊपर बड़ी ग्लानि हुई–''नहीं-नहीं, ऐसी अशुभ बात मेरे मन में क्यों आई ? इस रत्न के कारण ही न।''

और उसने वह रत्न अपने भाइयों को दे दिया। उसे देखते ही वे दोनों पहचान गए और उनका मन और भी वैराग्य की ओर झुक गया। रात के समय शूरदत्ता ने अपने बड़े पुत्र से पूछा, ''बेटा, बारह वर्ष में तुम क्या कमाकर लाए हो?''

उत्तर में बड़े पुत्र ने सारी कहानी माँ को सुनाई। अन्त में कहा, ''उस रत्न को अत्यन्त अमांगलिक मानकर हम नदी में फेंक आए थे।''

वह सब कथा सुनकर माँ बोली, ''वही रत्न मछली के पेट से मुझे मिला। मेरे मन में वैसे ही विचार आए, जैसे तुम दोनों के मन में आए थे। तब मैंने उसे मित्रवती को दे दिया।''

मित्रवती बोली, ''सच माँ ! मेरे मन में भी ऐसे ही खराब विचार आए इसीलिए इस भयंकर रत्न को मैंने भाइयों को दे दिया था। सोचती हूँ, मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था।''

जब सब अपनी-अपनी कहानी कह चुके तो सबके मन पवित्र हो गए। उन्होंने वह रत्न एक साधु को दे दिया। और फिर दीक्षा लेकर उनके मन में जो दुर्भावना पैदा हुई थी, उसका प्रायश्चित्त करने लगे। अन्त में क्रोध आदि को जीतकर मोक्ष के अधिकारी हुए।

इलापुत्र

इलावर्धन नगर में धनदत्त नाम का एक सेठ रहता था। इला देवी की कृपा से उसके एक पुत्र हुआ जिसका नाम रखा इलापुत्र। धीरे-धीरे वह बड़ा हुआ। वह जितना सुन्दर था, उतनी ही उसकी बुद्धि प्रखर थी। थोड़े ही दिनों में उसने पिता का काम संभाल लिया और बड़ी कुशलता से आगे बढ़ाने लगा।

एक दिन मार्ग में उसने एक जगह नाटक होते हुए देखा। कुशल नर्तक और नर्तकियों ने दर्शकों को अपनी कला से मुग्ध कर लिया था। उसमें भी एक नट कन्या बहुत निपुण थी। उसका रूप-लावण्य भी अद्‌भुत था। इलापुत्र उस पर मोहित हो गया। उस दिन से वह बहुत चिन्तित रहने लगा। पिता ने यह देखा तो उसका कारण पूछा। तब उसने अपनी सारी आप-बीती कह डाली। यह सुनकर सेठ को बहुत दुःख हुआ। वह नहीं चाहता था कि उसका पुत्र किसी नटी को प्यार करे। लेकिन जब उसका पुत्र नहीं माना, तो उसने पुत्र को अलग कर दिया।

इधर इलापुत्र ने नट के पास सन्देशा भेजा, लेकिन नट ने स्पष्ट कह दिया, ''मैं अपनी कन्या उसी को दूँगा जो हमारी तरह ही नट विद्या में निष्णात होगा।''

अब तो कुमार बहुत दुखी हुआ। न पिता ने उनकी बात

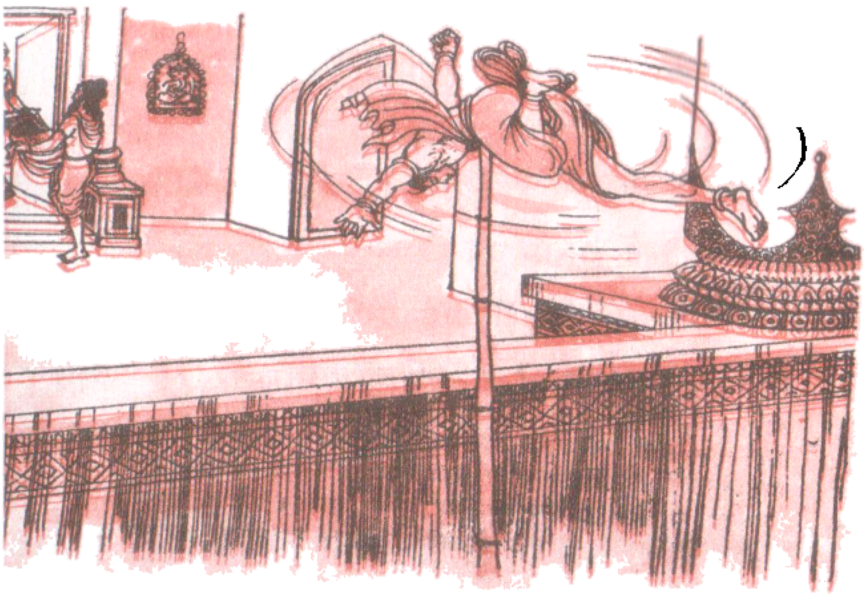

मानी, न नट ने। कातर होकर वह नट के पास पहुँचा। उसकी यह दशा देखकर नट ने कहा, "अच्छा, अगर तुम अपना घर छोड़कर हमारे साथ रहो और हमारी विद्या में कुशल होकर धन कमाओ, तो शायद बाद में मैं अपनी कन्या तुम्हें देने के बारे में विचार करूँ।"

इलापुत्र ने यह शर्त सहर्ष स्वीकार कर ली और माता-पिता से बिना पूछे सारी सम्पत्ति ठुकराकर वह नट के साथ चल पड़ा। गाँव-गाँव, नगर-नगर नृत्य-विद्या सीखता हुआ अपने भावी जीवन के सुनहरे सपने देखने लगा। दिन, महीने और वर्ष बीतने लगे। प्रतिभा-सम्पन्न था इसलिए वह शीघ्र ही उस कला में भी निष्णात हो गया। ऐसा लगता था, मानो वह नट-पुत्र ही हो। उसके कारण उस नट-मण्डली की लोकप्रियता दूर-दूर तक फैल गई। एक वार स्वयं राजा ने उसकी कला देखने की इच्छा प्रकट की। उस मण्डली के नेता ने इलापुत्र और अपनी लावण्यमयी कन्या को प्रदर्शन के लिए भेजा। रंगमंच के सामने राजा-रानी, सभासद्

और अपार जन-समूह एकत्रित हो गया था। नृत्य, संगीत और वाद्य के सरस और मनोहर कार्यक्रम देखकर वे सब मुग्ध हो उठे। लेकिन ऐसे समय भी राजा का ध्यान कहीं और था। वह नृत्य नहीं देख रहा था, देख रहा था नट-कन्या के लावण्य को। मन-ही-मन उसने प्रतिज्ञा की कि मैं इस कन्या को लेकर रहूँगा। लेकिन वह यह भी समझ गया कि इलापुत्र के रहते वह इस कन्या को न पा सकेगा। उसने इलापुत्र से कहा, ''तुम इस बाँस पर रखी हुई सुपारी पर अपनी नाभि टिका कर एक बार फिर चक्कर लगाओ।''

इलापुत्र ने एक बार नहीं, अनेक बार ऐसा किया और फिर सकुशल उतर कर राजा के सामने आ खड़ा हुआ। राजा शायद यह समझता था कि यह गिर पड़ेगा और मर जाएगा। ऐसा नहीं हुआ तो उसने एक बार फिर प्रदर्शन करने की माँग की। इलापुत्र खिन्न तो हुआ लेकिन पहले से भी अधिक कुशलता से उसने अपनी कला का प्रदर्शन किया। और अपना पुरस्कार माँगा। राजा राजा ने कहा, ''एक बार और।''

अब तो सभी दर्शक, यहाँ तक कि रानी भी बहुत दुःखी हुई। नट ने भी कहा ''अब यह सम्भव नहीं हो सकता।''

लेकिन राजा अडिग रहा। तब नट-कन्या ने इलापुत्र से कहा, ''हमारी कला में पवित्रता है, एक बार और प्रयत्न करो।''

इलापुत्र ने फिर प्रयत्न किया और पहले से भी अधिक कुशलता से चक्कर लगाने लगा। सहसा उसके मन में आया, क्यों न नंगी तलवार से राजा का निशाना बनाया जाए। वह यह सोच ही रहा था कि पूर्व दिशा में सूर्य की किरणें चमकीं और एक साधु उसी समय एक गृहस्थ के घर पानी की भिक्षा लेने आया। अन्दर से एक अत्यन्त लावण्यवती ललना भिक्षा

देने आई। भिक्षु ने उसकी ओर दृष्टि उठाकर भी नहीं देखा। भिक्षा ग्रहण करके चुपचाप चला गया।

यह देखकर इलापुत्र की भावना बिलकुल बदल गई। सोचा, कहाँ मैं और कहाँ यह मुनि! इस नटी के प्रेम में पागल होकर मैंने अपना सब कुछ गँवा दिया। अब राजा की शत्रुता मोल ली और यह मुनि है कि उस रूप की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। एक समय था जब लोग मुझ से याचना करते थे और आज मैं स्वयं याचक बना हूँ। इस नट-पुत्री के साथ मेरा जो सम्बन्ध होगा, वह भी केवल शारीरिक होगा और कुछ ही वर्षों का होगा। मैं उससे इतना प्रेम करता हूँ फिर भी वह मुझसे बहुत दूर है। यदि इतनी तपस्या मैं अपनी आत्मा के लिए करता तो न जाने कितना उज्ज्वल हो उठता।

यह सोचकर वह बाँस से उतरा। अब न उसे नट-कन्या से अनुराग था और न राजा से द्रोह। उसने सबको जनकल्याण का उपदेश दिया। उसे सुनकर राजा और नटी दोनों ही अनासक्त हो उठे।

एक भाव एक माल

प्राचीनकाल में एक बनिया रहता था। वह घी और तम्बाकू इन दो चीज़ों का व्यापार करता था। बहुत ईमानदार था, इसलिए आस-पास के क्षेत्र में बहुत लोकप्रिय भी था। उसका एक लड़का था। लेकिन वह बहुत भोला था। एक बार व्यापारी को किसी कार्यवश बाहर जाने की आवश्यकता हुई। अब तो वह चिन्तित हो उठा कि मेरे पीछे दूकान का काम कौन देखेगा। किसी बाहर के व्यक्ति को दूकान सौंपना संकट का काम है और मेरा बेटा व्यापार करने योग्य नहीं है।

उसको इस प्रकार चिन्तित देखकर पुत्र ने कहा, ''पिता जी ! आप चिन्ता न करें। निश्चिन्त होकर बाहर जाइए। मैं आपका पुत्र हूँ। दूकान को संभाल लूँगा। आप मुझे सब वस्तुओं के भाव बता दीजिए।''

पिता ने कहा, ''हमारी दूकान पर दो ही चीज़ें बिकती हैं, घी और तम्बाकू। दोनों का एक ही भाव है। याद करने का कोई प्रश्न ही नहीं। लेकिन हाँ, तुम्हें और एक बात याद रखनी होगी। वह यह कि जब तक खुले हुए टीनों का माल खत्म न हो जाए, नए टीन मत खोलना।''

पुत्र ने उत्तर दिया, ''बहुत अच्छा, पिता जी !''

इस प्रकार पुत्र को समझा-बुझाकर पिता बाहर चला गया और पुत्र दूकान पर आ बैठा। उसने चारों ओर नज़र दौड़ाई। एक ओर घी के टीन रखे हुए थे, दूसरी ओर तम्बाकू के। दोनों ओर एक-एक टीन खुला हुआ था। दोनों आधे-आधे थे। यह सब देखकर पुत्र ने मन ही मन सोचा—मेरे पिताजी मुझ को बड़ा भोला कहते हैं, लेकिन वह स्वयं कितने मूर्ख हैं। एक ही भाव की दो वस्तुओं के लिए दो टीन रोक रखे हैं। दोनों चीजों को एक में क्यों न कर दिया जाय। यह सोचकर उसने घी का टीन उठाया और तम्बाकू वाले टीन में उँडेल दिया। फिर गद्दी पर आ बैठा। थोड़ी देर बाद एक ग्राहक दूकान पर आया। बोला, "मुझे तम्बाकू चाहिए।"

वणिक पुत्र ने वह टीन लाकर उसके सामने रख दिया। पूछा, "कितना चाहते हो ?"

ग्राहक ने टीन को देखा। बोला, "मूर्ख ! यह क्या तम्बाकू है।

वणिक पुत्र ने उत्तर दिया, "जी हां ! मेरे पास यही तम्बाकू है। लेना हो तो लो, नहीं तो आगे जाओ।"

ग्राहक मुस्कराता हुआ चला गया। फिर दूसरा ग्राहक आया। उसने घी माँगा। लड़के ने उसके सामने भी वही टीन रख दिया।

ग्राहक ने कहा, "घी में यह तम्बाकू कैसा है ? कहीं भूल तो नहीं कर बैठे।"

वणिक पुत्र ने क्रुद्ध होकर उत्तर दिया, "भूल मेरी नहीं, तुम्हारी है। यह असली घी है। यदि लेना हो तो लो, नहीं तो चले जाओ।"

वह ग्राहक भी चला गया। सन्ध्या तक घी और तम्बाकू के अनेक ग्राहक आए, लेकिन उस टीन को देखकर सभी ने आश्चर्य प्रकट किया। वणिक-पुत्र को बुरा-भला भी कहा। दिन भर यही कहा-सुनी होती रही। लेकिन माल एक पैसे का भी नहीं बिका। रात आ गई। व्यापारी बाहर से लौट आया। उसने अपने लड़के से पूछा, "कहो बेटा ! क्या हाल रहा ?"

लड़के ने उत्तर दिया, "पिता जी ! आपने अपने सभी ग्राहकों को बिगाड़ रखा है। जो भी आता है, वही मुझे मूर्ख, बेवकूफ या गधा कहने लगता है। मैं यह सब नहीं सह सकता।"

पिता ने पूछा, "यह सब क्यों ? क्या तूने ग्राहकों को माल नहीं दिखाया या भाव ठीक नहीं बताया ?"

पुत्र ने उत्तर दिया, "पिता जी! मैंने तो वही भाव बताया जो आप बता गए थे।"

अब तो पिता असमंजस में पड़ गया। आखिर यह सब क्या हुआ ? वह पुत्र के भोलेपन से परिचित था, इसलिए इतना तो समझ रहा था कि गलती अवश्य ही मेरे बेटे की होगी। उसने पूछा, "क्यों बेटा, दूकान पर जाकर तूने क्या किया था ?"

पुत्र ने उत्तर दिया, ''पिता जी! मैं तो दिन-भर गद्दी पर बैठा रहा। ग्राहक जो भी वस्तु माँगता, वही उसे दिखाता और भाव भी बात देता। किन्तु पिता जी, आपकी एक बात मुझे अच्छी नहीं लगी। आप तो बहुत समझदार हैं...''

पिता ने एकदम पूछा, ''मेरी कौन-सी बात तुम्हें अच्छी नहीं लगी ?''

पुत्र ने उत्तर दिया, ''पिता जी! आपने घी और तम्बाकू दोनों का एक ही भाव बताया था।''

पिता ने कहा, ''हाँ-हाँ, फिर उससे क्या ?''

पुत्र मुस्कराकर बोला, ''दोनों चीज़ों के जब एक भाव हैं, तो आपने उन्हें अलग-अलग टीनों में क्यों रखा?''

यह सुनकर पिता हतप्रभ रह गया। बोला, ''तो तूने क्या किया ?''

पुत्र ने गर्व से उत्तर दिया, ''पिता जी ! मैंने दोनों को एक ही टीन में कर दिया और इस प्रकार एक टीन को बचा लिया।''

अब तो पिता हँस पड़े और अपने लाड़ले बेटे से बोले, ''तो बेटा ! अब तुम उस एक टीन का सामान भी कूड़े में डालकर उसे खाली कर लाओ।''

□□□

किशोरों के लिए उपन्यास

गुलिवर की यात्राएं (Gulliver's Travels) (पुरस्कृत)
रॉबिन्सन क्रूसो (Robinson Crusoe) (पुरस्कृत)
ख़ज़ाने की खोज में (Treasure Island) (पुरस्कृत)
चांदी का बटन (Kidnapped)
कठपुतला (Pinnochio) (पुरस्कृत)
वीर सिपाही (Ivanhoe)
चमत्कारी ताबीज़ (Talisman)
तीसमार ख़ां (Don Quixote)
तीन तिलंगे (Three Muskete rs)
क़ैदी की करामात (Count of Monte Christo)
डेविड कॉपरफील्ड (David Copperfield)
बर्फ़ की रानी (Anderson's Fairy Tales)
रॉबिनहुड (Robinhood)
जादू का दीपक (Stories from Arabian Nights)
अस्सी दिन में दुनिया की सैर (Around the World in 80 Days)
जादूनगरी (Alice in Wonderland)
मूंगे का द्वीप (Coral Island)
बहादुर टॉम (Tom Sawyer)
परियों की कहानियां (Grimm's Fairy Tales)
सिंदबाद की सात यात्राएं (The Seven Voyages of Sindbad)
ईसप की कहानियां (Aesop's Fables)
मोबी डिक (Moby Dick)
जंगल की कहानी (Call of the Wild)
काला घोड़ा (Black Beauty)
अद्भुत द्वीप (Swiss Family Robinson)
काला फूल (Black Tulip)
समुद्री दुनिया की रोमांचकारी यात्राएं (20,000 Leagues Under the Sea)

बाल-साहित्य

देश-विदेश की सचित्र लोककथाएं

पड़ोसी देशों की लोककथाएं
पंजाब की लोककथाएं
हरियाणा की लोककथाएं (पुरस्कृत)
हिमाचल की लोककथाएं
राजस्थान की लोककथाएं
मध्यप्रदेश की लोककथाएं
उत्तर प्रदेश की लोककथाएं
जापान की लोककथाएं
अफ्रीका की लोककथाएं
गुजरात की लोककथाएं
बिहार की लोककथाएं
असम की लोककथाएं
बंगाल की लोककथाएं (पुरस्कृत)
केरल की लोककथाएं

प्रेमचन्द की सरल, सचित्र बाल कहानियां

बूढ़ी काकी
बड़े घर की बेटी
सुजान भगत
परीक्षा
शतरंज के खिलाड़ी
दो बैलों की कथा
मां की ममता
शिकारी राजकुमार
गुल्ली-डण्डा
रानी सारंधा
नमक का दरोग़ा
रामलीला
पंच परमेश्वर
मन्दिर
ईद का त्यौहार
सब से बड़ा तीर्थ
कुत्ते की कहानी
मेरी कहानी
रामकथा
जंगल की कहानियां

रवीन्द्रनाथ टैगोर की सरल बाल-कहानियां

भोला राजा
काबुलीवाला
पारसमणि
मास्टरजी
तोते की कहानी
राजा का न्याय

राजपाल

ISBN 81-7028-473-2

9 788170 284734